Twelve contemplations

स्वामी कार्तिकेय द्वारा रचित 'द्वादशानुप्रेक्षा' के अनुसार, बारह भावनाओं (अनुप्रेक्षाओं) का अध्यायवार विवरण हिंदी और अंग्रेजी में नीचे दिया गया है:

१. अध्रुव अनुप्रेक्षा (Adhruva Anupreksha - Contemplation of Impermanence)

- **हिंदी:** इस भावना में संसार की समस्त वस्तुओं की क्षणभंगुरता का विचार किया जाता है।
- **English:** This reflection focuses on the **impermanence** of all worldly things, stating that whatever is born must perish and nothing is eternal in its modified form.

२. अशरण अनुप्रेक्षा (Asharana Anupreksha - Contemplation of Helplessness)

- **हिंदी:** जहाँ मृत्यु के समय कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है, उसे 'अशरण' कहते हैं।
- **English:** It describes the **absence of refuge** in the world, illustrating that even powerful beings cannot escape death, and only Right Faith, Knowledge, and Conduct are true protectors.

३. संसार अनुप्रेक्षा (Sansara Anupreksha - Contemplation of Transmigration)

- **हिंदी:** मिथ्यात्व और कषायों के वश होकर जीव का अनेक योनियों में भ्रमण करना 'संसार' है।
- **English:** This contemplation details the cycle of **transmigration** through the four realms (hell, animal, human, and celestial) and the five types of transformations (*Pancha Parivartan*).

४. एकत्व अनुप्रेक्षा (Ekatva Anupreksha - Contemplation of Solitude)

- **हिंदी:** जहाँ जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही अपने कर्मों का फल भोगता है।
- **English:** It emphasizes the **oneness or solitariness** of the soul, teaching that relatives cannot share one's suffering and the soul must walk the path of liberation alone.

५. अन्यत्व अनुप्रेक्षा (Anyatva Anupreksha - Contemplation of Distinctness)

- **हिंदी:** शरीर और आत्मा की भिन्नता का विचार करना 'अन्यत्व' है।
- **English:** This reflection highlights the **separateness** of the soul from the body and external possessions, encouraging the practitioner to renounce attachment to what is not the self.

६. अशुचित्व अनुप्रेक्षा (Ashuchitva Anupreksha - Contemplation of Impurity)

- **हिंदी:** शरीर की अपवित्रता और मलिनता का चिंतन करना।
- **English:** It involves contemplating the **impurity** of the physical body to generate detachment (*Vairagya*) from physical form.

७. आस्रव अनुप्रेक्षा (Asrava Anupreksha - Contemplation of Karma Inflow)

- **हिंदी:** आत्मा में कर्मों के आने के कारणों का विचार करना।
- **English:** This chapter explains the **inflow of karma** caused by activities of mind, speech, and body, and the role of passions (*Kashayas*) in this process.

८. संवर अनुप्रेक्षा (Samvara Anupreksha - Contemplation of Karma Stoppage)

- **हिंदी:** कर्मों के आने को रोकना 'संवर' कहलाता है।

- **English:** It describes the **stoppage** of the inflow of karma through the practice of self-control, vows, and the five committees (*Samitis*).

९. निर्जरा अनुप्रेक्षा (Nirjara Anupreksha - Contemplation of Karma Shedding)

- **हिंदी:** संचित कर्मों के एक देश झड़ने या नष्ट होने की प्रक्रिया।
- **English:** This reflection focuses on the **shedding** of accumulated karmas through penance (*Tapa*) and right meditation.

१०. लोक अनुप्रेक्षा (Loka Anupreksha - Contemplation of the Universe)

- **हिंदी:** लोक के विस्तार, आकार और उसमें स्थित द्रव्यों का स्वरूप जानना।
- **English:** A detailed study of the **nature of the universe**, its dimensions, and the six substances (*Dravyas*) that inhabit it.

११. बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा (Bodhi-Durlabha Anupreksha - Rarity of Enlightenment)

- **हिंदी:** रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) की प्राप्ति की अत्यंत कठिनाई का विचार।
- **English:** Contemplating the extreme **rarity of attaining enlightenment** and the human birth necessary for liberation.

१२. धर्म अनुप्रेक्षा (Dharma Anupreksha - Contemplation of Truth/Religion)

- **हिंदी:** वस्तु के स्वभाव और अहिंसा प्रधान दस लक्षणों वाले धर्म का चिंतन।
- **English:** Meditation on the **true nature of religion**, defined as the inherent nature of a substance (*Vastu Sahavo*) and the ten virtues of the soul

स्वामी कार्तिकेय द्वारा विरचित '**द्वादशानुप्रेक्षा**' के अनुसार **अध्रुव (अनित्य भावना)** अनुप्रेक्षा में संसार की समस्त वस्तुओं की क्षणभंगुरता का विचार किया गया है।

१. अध्रुव-अनुप्रेक्षा (Adhruva Anupreksha)

गाथा ४: जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, उसका नियम से विनाश होता है। परिणाम (पर्याय) के स्वरूप से तो कुछ भी शाश्वत (नित्य) नहीं है।

- **भावार्थ:** संसार में जो भी पर्यायें उत्पन्न होती हैं, वे स्वभाव से ही अनित्य हैं। केवल द्रव्य रूप से ही वस्तु नित्य होती है।

गाथा ५: जन्म के साथ मरण लगा हुआ है, यौवन बुढ़ापे के साथ उत्पन्न होता है और लक्ष्मी विनाश के साथ आती है; अतः संसार की सब वस्तुओं को क्षणभंगुर जानो।

गाथा ६: परिवार, परिजन, पुत्र-स्त्री, मित्र, शरीर की सुंदरता और घर-धन आदि समस्त वस्तुएं नवीन बादलों के समूह के समान अस्थिर हैं।

गाथा ७: इन्द्रियों के विषय, सेवकों का समूह, घोड़े, हाथी, रथ आदि ये सब इंद्रधनुष तथा बिजली के समान चंचल हैं, जो क्षणभर दर्शन देकर नष्ट हो जाने वाले हैं।

गाथा ८: जिस प्रकार मार्ग में पथिकों (यात्रियों) का संयोग क्षणमात्र के लिए होता है, वैसे ही संसार में बंधु-बांधवों का संयोग अस्थिर है।

गाथा ९: बहुत लाड़-प्यार से पाला गया यह शरीर, जिसे स्नान और सुगंधित पदार्थों से सजाया गया है, जल से भरे कच्चे घड़े के समान क्षणभर में नष्ट हो जाने वाला है।

गाथा १०: जो लक्ष्मी (संपत्ति) महान पुण्यवान चक्रवर्तियों के पास भी स्थिर नहीं रही, वह अल्प पुण्य वाले अन्य मनुष्यों के पास कैसे स्थिर रह सकती है?

गाथा ११: यह लक्ष्मी किसी भी कुलवान, धैर्यवान, पंडित, शूरवीर, धर्मात्मा या महापराक्रमी पुरुष से स्थायी प्रेम नहीं करती; यह देखते-देखते नष्ट हो जाती है।

गाथा १२: यह लक्ष्मी जल की लहर के समान चंचल है और केवल दो-तीन दिन के लिए ही विद्यमान है, इसलिए जब तक यह है, इसे दया-भावपूर्वक दान और परोपकार में लगाओ।

गाथा १३: जो पुरुष लक्ष्मी का केवल संचय करता है और न तो स्वयं भोगता है, न ही पात्रों को दान देता है, वह स्वयं को ठगता है और उसका मनुष्य जीवन निष्फल है।

गाथा १४: जो पुरुष लक्ष्मी का संचय करके उसे जमीन में बहुत गहरा गाड़ देता है, वह उस लक्ष्मी को पत्थर के समान बना देता है।

गाथा १५: जो निरंतर लक्ष्मी संचित करता है, पर न दान देता है न भोगता है, उसके लिए वह लक्ष्मी पराई लक्ष्मी के समान है (वह केवल उसका रक्षक या चौकीदार मात्र है)।

गाथा १६: लक्ष्मी में आसक्त चित्त होकर जो कष्ट सहकर उसे पैदा करता है, वह मूढ़ात्मा केवल राजा और कुटुंबियों का कार्य सिद्ध करता है (स्वयं केवल कष्ट भोगता है)।

गाथा १७-१८: जो अनेक कलाओं से लक्ष्मी बढ़ाता है, पर तृप्त नहीं होता और रात-दिन उसी के चिंतन में भोजन-नींद का भी त्याग कर देता है, वह लक्ष्मी रूपी युवती का गुलाम (किंकर) बन जाता है।

गाथा १९: जो पुरुष अपनी बढ़ती हुई लक्ष्मी को धर्म के कार्यों में लगाता है, उसकी लक्ष्मी सफल है और विद्वान लोग भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

गाथा २०: जो पुरुष ऐसा जानकर, धर्मयुक्त निर्धन लोगों को बिना किसी प्रतिफल की इच्छा के दान देता है, निश्चय ही उसी का जन्म सफल है।

गाथा २१: मोह का माहात्म्य बहुत बलवान है कि मनुष्य धन, यौवन और जीवन को जल के बुलबुले के समान नष्ट होते हुए देखकर भी उसे नित्य मानता है।

गाथा २२: अतः हे भव्य जीवों! समस्त विषयों को भंगुर (विनाशीक) जानकर और महामोह को छोड़कर अपने मन को विषयों से रहित करो, जिससे उत्तम (मोक्ष) सुख प्राप्त हो सके।

'Dwadashanupreksha' composed by Swami Kartikeya ji, the transience of all objects in the world is considered in the non-permanent feeling.

1. Adhruva Anupreksha
Gatha 4: Whatever has arisen is destroyed by its law. Nothing is eternal (perpetual) by the nature of the result (synonym).
Meaning: Whatever synonyms arise in the world are by nature impermanent. Only in the form of matter is the object eternal.
Gatha 5: With birth comes death, youth arises with old age and Lakshmi comes with destruction; Therefore, know all things in the world to be transient.
Gatha 6: Family, relatives, sons and daughters, friends, beauty of body and house-wealth, etc., are unstable like a group of new clouds.
Gatha 7: The subject of the senses, the group of servants, the horse, the elephant, the chariot, etc. These are all fickle like rainbows and lightning, which are to be destroyed by giving vision for a moment.
Gatha 8: Just as the conjunction of travelers on the path is temporary, so the conjunction of brothers and sisters in the world is unstable.
Gatha 9: Turned away by much pampering This body, which is bathed and decorated with perfumed substances, perishes in a moment like a crude pot filled with water.

Gatha 10: How can Lakshmi (wealth) remain steady even in the presence of the great virtuous Chakravartias with other men of lesser merit?
Gatha 11: This Lakshmi does not make lasting love to any noble, patient, learned, chivalrous, pious or great man; It is destroyed as you see it.
Gatha 12: This Lakshmi is as fickle as the waves of water and exists only for two or three days, so while it lasts, engage it kindly in charity and almsgiving.
Gatha 13: He who merely accumulates Purusha Lakshmi and neither enjoys himself nor gives gifts to the vessels cheats himself and his human life is fruitless.
Gatha 14: He who accumulates Lakshmi and gives her a very deep pit in the ground makes her like a stone.
Gatha 15: He who constantly accumulates Lakshmi, but neither gives nor enjoys it, to him is akin to the alien Lakshmi (he is merely her guardian or watchman).
Gatha 16: Being attached to Lakshmi, the mind that bears suffering and produces it, the foolish soul only performs the work of the king and the family (he himself suffers only suffering).
Gatha 17-18: He who increases Lakshmi by many arts, but is not satisfied and gives up even food and sleep in contemplation of her day and night, becomes (the form of Lakshmi) a young woman.
Gatha 19: The man who applies his growing Lakshmi to the works of Dharma, his Lakshmi is successful and even the learned praise him.
Gatha 20: The man who, knowing this, gives the gift of desire without any return to righteous wretched people, surely his birth is successful.
Gatha 21: The importance of delusion is so strong that man believes it to be eternal even though he sees wealth, youth and life perishing like bubbles in water.
Gatha 22: Hence, O magnificent beings! Knowing that all subjects are fragile (destructive) and giving up great delusion, devoid your mind of subjects, which may lead to the best (liberation) happiness.

२. अशरण-अनुप्रेक्षा (Asharana Anupreksha)

- **गाथा २३:** जिस संसार में देवों के इन्द्रों का भी विनाश देखा जाता है और जहाँ हरि (नारायण), हर (रुद्र) तथा ब्रह्मा जैसे बड़े पदवीधारी भी काल के द्वारा ग्रास बना लिए गए, वहाँ भला कौन शरण हो सकता है? भाव यह है कि संसार में जिनकी शरण सोची जाती है, वे स्वयं काल के वश में हैं।
- **गाथा २४:** जिस प्रकार वन में सिंह के पंजों के नीचे दबे हुए हिरण की रक्षा करने वाला कोई नहीं होता, वैसे ही मृत्यु (काल) द्वारा पकड़े गए जीव की रक्षा कोई नहीं कर सकता,।
- **गाथा २५:** यदि मरते हुए मनुष्य की रक्षा देव, मंत्र, तंत्र या क्षेत्रपाल (जिन्हें संसार रक्षक मानता है) कर पाते, तो मनुष्य इस पृथ्वी पर अक्षय (अमर) हो जाते और कोई कभी मरता ही नहीं,।
- **गाथा २६:** इस संसार में कोई भी कितना ही बलवान या भयानक क्यों न हो, वह मरण से रहित नहीं देखा गया है,। अनेक प्रकार के गढ़, कोट, सुभट और शस्त्रों द्वारा निरंतर रक्षा किए जाने पर भी मरण से कोई नहीं बचता और सब उपाय विफल हो जाते हैं।
- **गाथा २७:** मृत्यु को प्रत्यक्ष देखते हुए भी जो अज्ञानी जीव तीव्र मिथ्यात्व के वश होकर ग्रहों, भूत-पिशाच, योगिनी या यक्षों को अपनी शरण मानता है, वह महामूढ़ है,।
- **गाथा २८:** जीव का मरण आयु-कर्म के क्षय होने से होता है और कोई भी किसी को आयु देने में समर्थ नहीं है। अतः देवों का इन्द्र भी किसी को मरने से नहीं बचा सकता।
- **गाथा २९:** यदि देवों का इन्द्र स्वयं को भी मरने (च्युत होने) से रोकने में समर्थ होता, तो वह सर्वोत्तम भोगों से युक्त स्वर्ग को क्यों छोड़ता,?
- **गाथा ३० (निश्चय शरण):** हे भव्य जीव! इस संसार में भ्रमण करते हुए प्राणियों के लिए **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र** के अतिरिक्त अन्य कुछ भी शरण नहीं है, अतः परम श्रद्धा के साथ इसी रत्नत्रय स्वरूप शरण का सेवन कर,।
- **गाथा ३१:** परमार्थ से विचार करें तो आत्मा स्वयं ही अपनी रक्षा करने वाला है और स्वयं ही अपना घातक है। जब आत्मा क्षमा आदि दस लक्षणों के रूप में परिणत होता है तो वह स्वयं की रक्षा करता है, और जब तीव्र कषायों के वश होता है तो अपने ही द्वारा अपना घात करता है,।

अशरण भावना का निष्कर्ष (दोहा):

वस्तु स्वभाव के विचार से आत्मा ही स्वयं की शरण है। व्यवहार में परम गुरु (पंच परमेष्ठी) शरण हैं और बाकी सब संताप के कारण हैं।

स्वामी कार्तिकेय द्वारा विरचित '**द्वादशानुप्रेक्षा**' के अनुसार **३. संसार-अनुप्रेक्षा (Sansara Anupreksha)** के सभी ४२ पदों (गाथा ३२ से ७३) का हिंदी विवरण नीचे दिया गया है। इस अनुप्रेक्षा में चारों गतियों के दुखों और जीव के परिभ्रमण (पंच परावर्तन) का विस्तार से वर्णन है।

संसार का सामान्य स्वरूप (गाथा ३२-३३)

- **गाथा ३२:** यह जीव एक शरीर को छोड़ता है और नवीन शरीर को ग्रहण करता है। इस प्रकार बार-बार शरीरों को बदलना ही संसार है।
- **गाथा ३३:** मिथ्यात्व और कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) से युक्त जीव का अनेक योनियों में भ्रमण करना ही 'संसार' कहलाता है।

नरक गति के दुःख (गाथा ३४-३९)

- **गाथा ३४:** पाप के उदय से जीव नरक में उत्पन्न होता है, जहाँ वह पाँच प्रकार के उपमारहित असह्य दुःख सहता है।
- **गाथा ३५:** ये पाँच दुःख हैं: १. असुरकुमार देवों द्वारा दी गई पीड़ा, २. शारीरिक रोग, ३. मानसिक चिंता, ४. क्षेत्र-जनित (अत्यधिक सर्दी-गर्मी), और ५. परस्पर किया हुआ घात।
- **गाथा ३६:** नारकियों को तिल-तिल करके छेदा जाता है, वज्राग्नि में पकाया जाता है और मवाद (पूय) के कुंडों में फेंका जाता है।
- **गाथा ३७:** नरक के एक समय के दुःख का वर्णन हजार जीभ वाला भी नहीं कर सकता।
- **गाथा ३८:** नरक का क्षेत्र स्वभाव से ही अशुभ है और वहाँ के जीव सदा एक-दूसरे पर क्रोधित रहते हैं।
- **गाथा ३९:** पिछले भव का मित्र भी नरक में आकर शत्रु बन जाता है और क्रूरता से प्रहार करता है।

तिर्यंच (पशु) गति के दुःख (गाथा ४०-४४)

- **गाथा ४०:** नरक से निकलकर जीव तिर्यंच योनियों में जन्म लेता है, जहाँ गर्भ और जन्म के समय छेदन-भेदन के कष्ट पाता है।
- **गाथा ४१:** वह हिंसक पशुओं द्वारा खाया जाता है या दुष्ट मनुष्यों द्वारा मारा जाता है और सदा भयभीत रहता है।
- **गाथा ४२:** तिर्यंच एक-दूसरे को खाते हैं। जहाँ माता ही अपनी संतान को खा जाए, वहाँ कौन रक्षा करे?
- **गाथा ४३:** जीव तीव्र भूख, प्यास और पेट की अग्नि (उदराग्नि) से जलता हुआ दारुण दुःख पाता है।
- **गाथा ४४:** तिर्यंच योनि में अनेक कष्ट सहने के बाद यह जीव लब्धि-अपर्याप्त मनुष्य होता है।

मनुष्य गति के दुःख (गाथा ४५-५५)

- **गाथा ४५:** मनुष्य के रूप में गर्भ में वह संकुचित अंगों के साथ रहता है और जन्म के समय योनि से निकलते हुए तीव्र पीड़ा सहता है।
- **गाथा ४६:** यदि माता-पिता मर जाएँ, तो बालक दूसरों की जूठन पर पलकर महादुखी होकर काल बिताता है।
- **गाथा ४७-४८:** पाप के उदय से ही जीव ऐसे दुःख सहता है, फिर भी वह पुण्य कार्य न कर पाप में ही लगा रहता है। विरले ही सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य का संचय करते हैं।
- **गाथा ४९:** पुण्यवानों को भी इष्ट का वियोग सहना पड़ता है; जैसे भरत चक्रवर्ती भी अपने भाई बाहुबली से पराजित होकर दुखी हुए।
- **गाथा ५०:** इस संसार में कोई भी ऐसा पुण्यवान नहीं है जिसके सभी मनोरथ पूर्ण हों।
- **गाथा ५१-५४:** मनुष्य जीवन में किसी के पत्नी नहीं, किसी के पुत्र नहीं, किसी का शरीर रोगी है, किसी के संतान दुराचारी है, और कोई अग्नि या दरिद्रता से पीड़ित है।
- **गाथा ५५:** इतने कष्ट सहने पर भी जीव धर्म में बुद्धि नहीं लगाता और पाप नहीं छोड़ता।

संसार का स्वभाव (गाथा ५६-५७)

- **गाथा ५६:** कर्मों के वश यहाँ धनी निर्धन, राजा नौकर और नौकर राजा बन जाता है।
- **गाथा ५७:** कर्म विपाक से शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है, यही संसार का स्वभाव है।

देव गति के दुःख (गाथा ५८-६१)

- **गाथा ५८-५९:** देवों को भी अन्य देवों की ऋद्धि देखकर मानसिक दुःख होता है और विषयों की तृष्णा कभी शांत नहीं होती।
- **गाथा ६०:** शारीरिक दुःख से मानसिक दुःख प्रचुर है, जो मानसिक रूप से दुखी है उसे विषय-भोग भी दुःखदायी लगते हैं।
- **गाथा ६१:** विषयों के अधीन जो सुख है, वह वास्तव में दुःख का ही कारण है।

संसार की विचित्रता (गाथा ६२-६५)

- **गाथा ६२:** इस भयानक संसार सागर में कहीं भी सच्चा सुख नहीं है।
- **गाथा ६३:** मोह के माहात्म्य से एक राजा भी मरकर विष्ठा का कीड़ा बन जाता है और वहीं सुख मानने लगता है।
- **गाथा ६४-६५:** संसार में संबंधों की कोई स्थिरता नहीं है। एक ही भव में पुत्र भाई बन जाता है, माता सौत बन जाती है और पिता पति बन जाता है (वसंततिलका की कथा के अनुसार)।

पंच परावर्तन (गाथा ६६-७१)

- **गाथा ६६:** संसार में भ्रमण पाँच प्रकार का है: द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव परावर्तन।
- **गाथा ६७ (द्रव्य):** मिथ्यात्व के कारण जीव ने अनंत बार पुद्गल परमाणुओं को कर्म और नोकर्म रूप में ग्रहण किया और छोड़ा है।
- **गाथा ६८ (क्षेत्र):** आकाश का ऐसा कोई प्रदेश नहीं जहाँ यह जीव अनंत बार जन्मा और मरा न हो।
- **गाथा ६९ (काल):** काल चक्र के प्रत्येक समय (उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी) में जीव ने अनंत बार जन्म-मरण किया है।

- **गाथा ७० (भव):** जीव ने नरक से लेकर ग्रेवेयक तक की सभी आयु स्थितियों को अनंत बार भोगा है।
- **गाथा ७१ (भाव):** जीव ने कर्म बंध के कारणभूत सभी प्रकार के कषाय स्थानों और परिणामों को अनंत काल तक भोगा है।

उपदेश (गाथा ७२-७३)

- **गाथा ७२:** अनादिकाल से जीव मिथ्यात्व के दोष से इस दुखों के खान रूप संसार में भटक रहा है।
- **गाथा ७३:** ऐसा जानकर मोह को त्याग दो और अपने आत्म-स्वरूप का ध्यान करो जिससे संसार का परिभ्रमण नष्ट हो जाए।

2. Asharana Anupreksha
Gatha 23: In which world even Indra of the gods is seen to be destroyed and where Hari (Narayana), Har (Rudra) and even the great rank-holders like Brahma have become grass by time? The sense is that those who think refuge in the world are themselves under the control of time.
Gatha 24: Just as in the forest there is no one to protect a deer pressed under the claws of a lion, so no one can protect a soul seized by death (time),.
Gatha 25: If a dying man is protected by a god, mantra, tantra or Kshetrapal (whom he believes to be the guardian of the world), then the man becomes inexhaustible (immortal) on this earth and never dies.
Gatha 26: No matter how powerful or terrible anyone in this world may be, he has not been seen to be immune to death,. Even when constantly defended by fortifications of many kinds, coats, subhats and weapons, no one escapes death and all measures fail.
Gatha 27: Even seeing death directly, the ignorant being who, being subject to intense falsehood, takes refuge in planets, ghost-vampires, yoginis or yakshas, is a great delusion,.
Gatha 28: The death of a being is caused by the decay of life-karma and no one is capable of giving life to anyone. Therefore even Indra of the gods cannot save anyone from death.
Gatha 29: If Indra of the gods is able to prevent even himself from dying (being removed), why does he leave heaven with the best enjoyments,?
Gatha 30 (determined refuge): O magnificent creature! There is no other refuge for beings wandering in this world except Samyagdarshan, Samyagjnana and Samyakcharitra.
Gatha 31: Considering the ultimate, the soul is self-protective and self-killer. When the soul is transformed into the ten virtues of forgiveness, etc., it protects itself, and when it is subjected to sharp passions, it ambushes itself by itself,.
Conclusion of Asharan Bhavana (Doha):
The soul is the refuge of the self from the idea of object nature. In practice, the Supreme Guru (Panch Parameshthi) is the refuge and all the rest are causes of suffering.

3. Sansara Anupreksha (The Cycle of Transmigration)

This chapter describes the soul's aimless wandering through various life forms due to delusion and passion.

General Nature of Sansara (Verses 32–33)

- **English:** Transmigration consists of the soul repeatedly discarding an old body and assuming a new one. This cycle is driven by **Mithyatva** (false belief) and **Kashayas** (passions like anger, pride, deceit, and greed).
- **Hindi:** शरीर से अन्य शरीर की प्राप्ति होते रहना सो संसार है। मिथ्यात्व और कषायों से युक्त जीव का अनेक योनियों में भ्रमण करना 'संसार' कहलाता है.

Sufferings in the Four Realms (Verses 34–61)

According to the sources, the **Sansara Anupreksha** (Contemplation of Transmigration) describes the specific sufferings found in the four realms of existence. Below are the details for **Verses 34–61**, based on the commentary provided in the text.

I. Sufferings in the Hell Realm (Naraka Gati)

- **Verse 34:** Due to the rise of pap (sinful karma), a soul is born in hell where it endures five types of incomparable and unbearable pain.
- **Verse 35:** These five types of pain are: 1. Torture inflicted by Asurkumar deities, 2. Physical diseases, 3. Mental anguish, 4. Environmental extremes (intense heat or cold), and 5. Mutual violence.
- **Verse 36:** Beings in hell are pierced into tiny pieces like sesame seeds, cooked in vajra-fire, and thrown into pits of pus and blood.
- **Verse 37:** Even a being with a thousand tongues could not fully describe the total suffering endured in hell in just a single moment.
- **Verse 38:** Everything in hell is naturally painful and inauspicious due to the nature of the environment; the beings there are constantly angry and at war with one another.
- **Verse 39:** Someone who was a friend or relative in a past life becomes a cruel enemy in hell and strikes with anger; the soul endures this intense suffering for a very long time.

II. Sufferings in the Animal Realm (Tiryancha Gati)

- **Verse 40:** After leaving hell, the soul is born among various types of animals, where it suffers during conception and the pain of being born.
- **Verse 41:** Animals live in constant, terrifying fear of being eaten by predators or killed by cruel humans.
- **Verse 42:** In this realm, animals eat each other; the sources ask, "Who can protect the soul where even the mother may consume her own offspring?".
- **Verse 43:** The soul suffers from extreme hunger and thirst, feeling as though it is burning from the fire of its own stomach.
- **Verse 44:** After enduring these many types of animal suffering, the soul may eventually be born as a *labdhi-aparyapta* human (one who dies before completing physical development).

III. Sufferings in the Human Realm (Manushya Gati)

- **Verse 45:** Even if born as a developed human, the soul suffers in the womb with compressed limbs and feels intense pain while passing through the birth canal.
- **Verse 46:** If the parents die during the soul's childhood, it may grow up neglected, living on the scraps of others and spending its life in great misery.
- **Verse 47:** All people suffer these miseries due to past bad karma, yet they continue to commit sins and fail to perform meritorious deeds like charity or vows.
- **Verse 48:** It is extremely rare to find a soul with Right Faith (*Samyagdrishti*) who earns merit while remaining calm and repentant of their faults.
- **Verse 49:** Even those with merit face the sorrow of losing what is dear; for example, the powerful Emperor Bharat Chakravarti felt humiliated and pained when defeated by his younger brother Bahubali.
- **Verse 50:** No one in this world possesses enough merit to have every single desire fulfilled; there is always something missing.
- **Verse 51:** One person may lack a spouse, another a son, and another may have a body filled with disease.
- **Verse 52:** Even if one attains health and wealth, they may face a premature and sudden death.
- **Verse 53:** Some suffer due to an immoral spouse, a son addicted to vices, or a brother who acts like an enemy.
- **Verse 54:** Others suffer when a good son or a beloved wife dies, or when their home and family are destroyed by fire.
- **Verse 55:** Despite these many types of human suffering, the soul often fails to turn its mind toward religion or renounce its sinful activities.

IV. The Nature of Samsara and Celestial Suffering (Deva Gati)

- **Verse 56:** Due to karma, the wealthy become poor, the poor become masters, kings become servants, and servants become kings.
- **Verse 57:** Karma causes enemies to become friends and friends to become enemies; this is the very nature of the world.
- **Verse 58:** Even if a soul becomes a celestial being (deva), it suffers mental pain and jealousy upon seeing the greater splendor and wealth of other deities.
- **Verse 59:** Deities suffer from the thirst for sensory pleasures and the sorrow of eventually being separated from their objects of desire.
- **Verse 60:** Mental suffering is far more abundant and intense than physical suffering; for one who is mentally distressed, even objects of pleasure become a source of pain.
- **Verse 61:** Worldly happiness, which is dependent on sensory objects, is actually a cause of future suffering.

The Weirdness of Worldly Relations (Verses 62–65)

- **English:** In this "ocean of misery," relationships are unstable. The sources illustrate this with a story where, over different births, a son becomes a brother, a mother becomes a rival wife, and a father becomes a husband due to the complexities of karma.
- **Hindi:** संसार में संबंधों की कोई स्थिरता नहीं है। एक ही भव में पुत्र भाई बन जाता है और माता सौत बन जाती है.

The Five-Fold Cycle of Wandering (Verses 66–71)

The soul undergoes **Pancha Parivartan** (Five Cycles of Change):

1. **Dravya (Matter):** Repeatedly taking in and casting off all possible material particles as karma.
2. **Kshetra (Space):** Being born and dying on every single point of space in the universe.
3. **Kala (Time):** Being born and dying at every possible micro-moment of the cosmic time cycle.
4. **Bhava (Incarnation):** Living through every possible life span in every realm of existence.
5. **Bhava (Disposition/Thought):** Experiencing every possible degree of passion and thought-activity that leads to karma.

Conclusion and Advice (Verses 72–73)

- **English:** Having wandered since beginningless time due to the fault of false belief, the soul should now recognize the worthlessness of the world. One must renounce delusion and meditate on the true nature of the self to end this cycle.
- **Hindi:** अनादिकाल से जीव मिथ्यात्व के दोष से इस संसार में भटक रहा है। ऐसा जानकर मोह का त्याग कर आत्म-स्वरूप का ध्यान करो जिससे संसार का परिभ्रमण नष्ट हो जाए.

स्वामी कार्तिकेय द्वारा विरचित '**द्वादशानुप्रेक्षा**' के अनुसार **४. एकत्व-अनुप्रेक्षा (Ekatva Anupreksha - Contemplation of Solitude)** के सभी ६ पदों (गाथा ७४ से ७९) का हिंदी और अंग्रेजी विवरण नीचे दिया गया है:

४. एकत्व-अनुप्रेक्षा (Ekatva Anupreksha)

इस अनुप्रेक्षा में इस सत्य का चिंतन किया जाता है कि आत्मा इस संसार में अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है।

गाथा ७४:

- **Hindi:** इक्को जीवो जायदि, इक्को गब्भम्मि गिह्दे देहं। इक्को बाल जुवाणो, इक्को हुइ जरागहिओ॥
- **भावार्थ:** यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही गर्भ में शरीर धारण करता है, अकेला ही बालक और जवान होता है और अकेला ही बुढ़ापे से ग्रस्त होता है।
- **English:** The soul is born alone, and it alone enters the womb to assume a body. It alone passes through childhood and youth, and it alone faces the decay of old age.

गाथा ७५:

- **Hindi:** इक्को रोई सोई, इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे। इक्को मरदि वराओ, प्रयूदुखं सहइ इक्को वि॥
- **भावार्थ:** जीव अकेला ही रोगी और शोकातुर होता है, अकेला ही मानसिक दुखों से संतप्त होता है, अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है और अकेला ही नरक के दुखों को सहता है।
- **English:** The soul alone suffers from disease and grief, and it alone is tormented by mental anguish. The poor soul dies alone, and it is the soul alone that endures the miseries of hell.

गाथा ७६:

- **Hindi:** इक्को संचदि पुणणं, इक्को अब्जेदि विविहसुरसोक्खं। इक्को खवेदि कम्मं, इक्को वि य पावए भोक्खं॥
- **भावार्थ:** यह जीव अकेला ही पुण्य संचित करता है, अकेला ही स्वर्ग के विविध सुखों को भोगता है, अकेला ही कर्मों का क्षय करता है और अकेला ही मोक्ष प्राप्त करता है।
- **English:** The soul alone accumulates merit (punya) and alone enjoys the various pleasures of the celestial realm. It is the soul alone that sheds its karmas and ultimately attains the state of liberation (moksha).

गाथा ७७:

- **Hindi:** सुयणो पिच्छंतो वि हु, ण ढुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं। एवं जाणंतो वि हु, तो वि ममत्तं ण छडेइ॥
- **भावार्थ:** कुटुम्बी जन देखते हुए भी जीव के दुख का लेश मात्र भी बाँटने में समर्थ नहीं हैं; ऐसा प्रत्यक्ष जानकर भी यह जीव अपनों का मोह नहीं छोड़ता है।
- **English:** Relatives, even while watching, are unable to take away even a tiny fraction of one's suffering. Despite knowing this truth through direct experience, the soul still does not renounce its attachment to family.

गाथा ७८:

- **Hindi:** जीवस्स णिन्चयादो, धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो। सो लेइ देवलोए, सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ॥
- **भावार्थ:** निश्चय से **दशलक्षण धर्म** ही जीव का एकमात्र सच्चा सगा (मित्र) है, क्योंकि वही स्वर्ग ले जाता है और वही दुखों का क्षय (मोक्ष) करता है।
- **English:** From an absolute point of view, only the **ten-fold religion (Dharma)** is the soul's true relative. This Dharma alone leads the soul to the celestial realm and causes the complete destruction of all miseries.

गाथा ७९:

- **Hindi:** सव्वायरेण जाणह, इक्क जीवं सरीरदो भियणं। जह्मि दु मुणिदे जीवो, होइ असेसं खणे हवयं॥
- **भावार्थ:** समस्त प्रयत्नों के द्वारा इस अकेले जीव को शरीर से भिन्न जानो; क्योंकि आत्मा का स्वरूप जान लेने पर अन्य सभी पर-द्रव्य क्षणभर में त्यागने योग्य हो जाते हैं।
- **English:** With every effort, one should know the solitary soul to be distinct from the physical body. Once the soul is recognized in its true nature, all other external substances become worthy of being renounced in a single moment.

The **Anyatva Anupreksha (Contemplation of Distinctness)** comprises verses **80 to 82** of the *Dvadasha Anupreksha*. This reflection focuses on the fundamental separateness of the soul from the body and external relations.

५. अन्यत्व-अनुप्रेक्षा (Anyatva Anupreksha - Contemplation of Distinctness)

Verse 80

- **Hindi:** यह जीव संसार में देह धारण करता है सो अपने से अन्य (भिन्न) है और माता भी अन्य है, स्त्री भी अन्य होती है, पुत्र भी अन्य ही उत्पन्न होता है; ये सब कर्म संयोग से होते हैं.
- **English:** In this world, the soul assumes a physical body, yet that body is distinct from the soul itself. Similarly, the mother, the wife, and the son are all separate entities; all these relationships are merely the result of karmic associations.

Verse 81

- **Hindi:** सब बाह्य वस्तुओं को अपने स्वरूप से भिन्न जानता है, तो भी प्रत्यक्ष रूप से जानता हुआ भी यह मूढ़ (मोही) जीव उनमें ही राग करता है। सो यह बड़ी मूर्खता है.
- **English:** Although a soul may intellectually recognize that all external objects are different from its own nature, the deluded soul still develops attachment and passion toward them. The sources describe this persistent attachment as a form of great ignorance or foolishness.

Verse 82

- **Hindi:** जो जीव अपने स्वरूप से देह को परमार्थ से भिन्न जानकर आत्म-स्वरूप की सेवा (ध्यान) करता है, उसके लिए अन्यत्व-भावना कार्यकारिणी (सफल) है.
- **English:** This contemplation becomes truly effective only for the soul who realizes that the body is fundamentally separate from its true nature and, knowing this, devotes itself to the service and meditation of the self.

Conclusion (Doha)

- **Hindi:** निज आतमतें भिन्न पर, जानै जे नर दक्ष। निजमें रमै तजि अपर, ते शिव लहें प्रत्यक्ष॥
- **English:** Those wise individuals who recognize everything external as distinct from their own soul, and who renounce the "other" to revel in the self, will directly attain liberation (Moksha).

The **Ashuchitva Anupreksha (Contemplation of Impurity)** comprises verses **83 to 87**. This reflection focuses on the inherent impurity of the physical body to foster detachment and spiritual focus.

६. अशुचित्व अनुप्रेक्षा (Ashuchitva Anupreksha - Contemplation of Impurity)

Verse 83

- **Hindi:** यह देह सब कुत्सित (निंदनीय) पदार्थों का पिंड है, कीड़ों और निगोदादि जीवों से भरा है, अत्यंत दुर्गंधित है और मलमूत्र का घर है.
- **English:** This body is a collection of all filthy substances, filled with worms and microscopic organisms, extremely foul-smelling, and is essentially a residence for excrement and urine.

Verse 84

- **Hindi:** चन्दन और कपूर जैसे अत्यंत पवित्र, सरस और मनोहर सुगंधित पदार्थ भी इस शरीर के संपर्क से घिनावने और दुर्गंधयुक्त हो जाते हैं.
- **English:** Even substances that are extremely pure, pleasing, and fragrant—such as sandalwood and camphor—become repulsive and foul-smelling upon contact with this body.

Verse 85

- **Hindi:** विधाता (कर्म) ने मनुष्यों का यह अशुचि शरीर वैराग्य उत्पन्न करने के लिए बनाया है, फिर भी अज्ञानी जीव इसमें अनुराग करते हैं.
- **English:** Destiny (Karma) has crafted this impure human body specifically to generate detachment (*Vairagya*), yet ignorant beings continue to remain attached to it.

Verse 86

- **Hindi:** ऐसे अशुचि शरीर को प्रत्यक्ष देखते हुए भी मनुष्य इसमें अनुराग करते हैं और आदरपूर्वक इसकी सेवा करते हैं, जैसे ऐसा शरीर पहले कभी न पाया हो.
- **English:** Despite witnessing the impurity of the body directly, humans still exhibit attachment and serve it with care, as if they have never possessed such a body before.

Verse 87

- **Hindi:** जो दूसरों के शरीर से विरक्त होकर अपने शरीर में भी अनुराग नहीं करता और अपने आत्म-स्वरूप में लीन रहता है, उसी की अशुचि भावना सफल है.
- **English:** The contemplation of impurity is deemed successful only for the person who becomes detached from the bodies of others, renounces attachment to their own physical form, and remains absorbed in the nature of the self.

Conclusion (Doha)

- **Hindi:** स्वपर देह अशुचि लखि, तजे तास अनुराग। ताके साँची भावना, सो कहिये बड़भाग.
- **English:** He who recognizes the impurity of both his own and others' bodies and renounces attachment to them possesses true contemplation and is considered truly fortunate.

The**Asrava Anupreksha (Contemplation of Karma Inflow)** comprises verses **88 to 94**. This reflection focuses on understanding how karmic matter enters the soul and the role of passions in this process.

७. आस्रव अनुप्रेक्षा (Asrava Anupreksha - Contemplation of Karma Inflow)

Verse 88: Definition of Inflow (*Asrava*)

- **Hindi:** मन, वचन, काय की क्रियाओं से आत्मा के प्रदेशों का चंचल होना 'योग' है और यही 'आस्रव' कहलाता है। यह मोह (मिथ्यात्व-कषाय) सहित और मोह रहित दो प्रकार का होता है.
- **English:** The vibration of the space-points of the soul caused by the activities of mind, speech, and body is called **Yoga**, which constitutes **Asrava** (inflow). It can occur either with the presence of delusion (*Samparayika*) or without it (*Iryapatha*).

Verse 89: Causes of Inflow

- **Hindi:** मोह के उदय से जीव के जो परिणाम होते हैं, वे ही 'आस्रव' हैं। ये मिथ्यात्व आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं (मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग).
- **English:** The various mental dispositions of the soul caused by the rise of delusion are the real causes of inflow. These are classified into five types: **false belief** (*Mithyatva*), **non-abstinence** (*Avirata*), **negligence** (*Pramada*), **passions** (*Kashaya*), and **vibratory activity** (*Yoga*).

Verse 90: Merit (*Punya*) and Demerit (*Papa*)

- **Hindi:** कर्म पुण्य और पाप के भेद से दो प्रकार का है। मंद कषाय के परिणाम 'पुण्यास्त्रव' (शुभ) हैं और तीव्र कषाय के परिणाम 'पापास्त्रव' (अशुभ) हैं.
- **English:** Karma is of two kinds: **Merit** and **Demerit**. Inflow caused by mild passions leads to the accumulation of merit, while inflow driven by intense passions leads to demerit.

Verse 91: Signs of Mild Passions (*Mandakashaya*)

- **Hindi:** सब जगह प्रिय वचन बोलना, दुष्टों के कठोर वचन सुनकर भी क्षमा करना और सभी के गुणों को ग्रहण करना—ये मंद कषाय के लक्षण हैं.
- **English:** Speaking kindly to all, exercising forgiveness even when faced with harsh words from wicked people, and appreciating the virtues of others are indicators of **mild passions**.

Verse 92: Signs of Intense Passions (*Tivrakashaya*)

- **Hindi:** अपनी प्रशंसा करना, पूज्य पुरुषों में भी दोष ढूँढना और लंबे समय तक वैर (दुश्मनी) पालना तीव्र कषाय के चिन्ह हैं.
- **English:** Boasting about oneself, finding faults in venerable persons, and harboring long-term enmity are the hallmarks of **intense passions**.

Verse 93: Importance of Renunciation

- **Hindi:** जो मनुष्य इन दोषों को जानकर भी त्यागने योग्य परिणामों को नहीं छोड़ता, उसका आस्रव का चिंतन करना निरर्थक है.
- **English:** If a person recognizes these harmful dispositions but fails to renounce them, their contemplation of karmic inflow remains completely **fruitless**.

Verse 94: Successful Contemplation

- **Hindi:** जो पुरुष मोहजन्य परिणामों को 'हेय' (त्याज्य) मानकर वीतराग भावों में लीन होता है, उसी का आस्रव-चिंतन सफल है.
- **English:** Contemplation is successful only for the one who views dispositions born of delusion as something to be discarded and remains absorbed in a state of **calm detachment**.

Conclusion (Doha)

- **Hindi:** आस्रव पंचप्रकारकू', चितै तजि विकार। ते पावैं निजरूपकू', इह भावना सार.
- **English:** By contemplating the five types of inflow and discarding impure dispositions, one attains the true nature of the self; this is the essence of this reflection.

The**Samvara Anupreksha (Contemplation of Karma Stoppage)** comprises verses **95 to 101**. This reflection focuses on the methods to stop the inflow of new karmic matter into the soul.

८. संवर अनुप्रेक्षा (Samvara Anupreksha - Contemplation of Karma Stoppage)

Verse 95: Names and Definition of Samvara

- **Hindi:** सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, कषायों को जीतना और योगों (मन-वचन-काय की चंचलता) का अभाव—ये संवर के नाम हैं.
- **English:** Right faith, partial vows, great vows, conquering passions, and the absence of vibratory activity (Yoga) are the various forms and names of **Samvara**.

Verse 96: Foundation of Stoppage

- **Hindi:** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान संवर के आधार हैं, परन्तु विशेष रूप से 'चारित्र' ही कर्मों को रोकने का साक्षात् कारण है.
- **English:** While Right Faith and Right Knowledge are the foundation, it is specifically **Right Conduct** (*Charitra*) that serves as the direct cause for stopping the inflow of karma.

Verse 97: Means of Samvara (Guptis and Samitis)

- **Hindi:** मन-वचन-काय की प्रवृत्तियों को रोकना (गुप्ति), यत्नपूर्वक चलना-बोलना आदि (समिति), प्रमाद का त्याग, दयाप्रधान धर्म और आत्म-स्वरूप का बार-बार चिंतन करना संवर के साधन हैं.
- **English:** Restraining the activities of mind, speech, and body (**Guptis**), practicing carefulness in actions (**Samitis**), renouncing negligence, practicing compassion-based religion, and the constant contemplation of the self are the primary means of Samvara.

Verse 98: Victory over Afflictions (*Parishaha*)

- **Hindi:** भूख-प्यास आदि के भयानक कष्टों को शांत भाव (वीतराग भाव) से सहना महामुनियों का 'परीषह जय' कहलाता है, जो संवर में सहायक है.
- **English:** The calm and detached endurance of severe afflictions such as hunger and thirst by great monks is known as **Victory over Afflictions** (*Parishaha-jaya*), which aids in stopping karma.

Verse 99: Supreme Conduct

- **Hindi:** राग-द्वेष आदि दोषों से रहित होकर शुद्ध आत्म-स्वरूप के ध्यान में लीन होना ही 'उत्तम चारित्र' है.
- **English: Supreme Conduct** is defined as being absorbed in meditation on the pure nature of the soul, completely free from the defects of attachment and aversion.

Verse 100: Consequence of Neglecting Samvara

- **Hindi:** जो इन संवर के कारणों को जानकर भी उनका आचरण नहीं करता, वह दुःखों से संतप्त होकर इस संसार में बहुत काल तक भटकता रहता है.
- **English:** One who understands these causes of stoppage but fails to practice them will continue to wander through the painful cycle of transmigration for a very long time.

Verse 101: The True Practitioner

- **Hindi:** जो मुनि इन्द्रिय और मन के विषयों से विरक्त होकर अपनी आत्मा को सदा संवर रूप रखते हैं, उनके ही वास्तव में संवर प्रकट होता है.
- **English:** True Samvara manifests only in a monk who is detached from sensory and mental pleasures and keeps his soul constantly in a state of self-restraint.

Conclusion (Doha)

- **Hindi:** गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीसहकार। चारित गह संग तजि, सो मुनि संवरधार.
- **English:** By observing restraints, carefulness, and religious virtues, and by conquering afflictions and adopting right conduct while renouncing all attachments, a monk truly stops the inflow of karma.

The**Nirjara Anupreksha (Contemplation of Karma Shedding)** comprises verses **102 to 114** of the *Dvadasha Anupreksha*. This reflection focuses on the process and significance of shedding accumulated karmas from the soul.

९. निर्जरा अनुप्रेक्षा (Nirjara Anupreksha - Contemplation of Karma Shedding)

Verse 102: For whom does Nirjara occur?

- **Hindi:** ज्ञानी पुरुष के अहंकार रहित होने पर, विषयों की इच्छा त्यागने पर, वैराग्य भावना और बारह प्रकार के तप से निर्जरा होती है.
- **English:** Nirjara (the shedding of karma) occurs in a wise person who is free from ego and worldly desires through the practice of twelve types of penance and the cultivation of detachment.

Verse 103: Definition of Nirjara

- **Hindi:** समस्त कर्मों की फल देने की शक्ति को 'अनुभाग' कहते हैं। उदय में आने के बाद उन कर्मों का आत्मा से झड़ जाना 'निर्जरा' है.
- **English:** The inherent power of karmas to produce results is called 'anubhaga' (intensity). The process of these karmas falling away from the soul after they have matured is known as Nirjara.

Verse 104: Two types of Nirjara

- **Hindi:** निर्जरा दो प्रकार की है: १. सविपाक (समय पर स्वयं होने वाली) और २. अविपाक (तप द्वारा की गई)। पहली चारों गतियों में होती है, दूसरी केवल व्रतधारियों के होती है.
- **English:** Nirjara is of two kinds: 1. *Savipaka* (natural shedding upon maturation of time) and 2. *Avipaka*(intentional shedding through penance). The former occurs naturally in all four realms of existence, while the latter is achieved only by those practicing vows.

Verse 105: Factors increasing Nirjara

- **Hindi:** जैसे-जैसे मुनियों में साम्य भाव और तप बढ़ता है, वैसे-वैसे निर्जरा बढ़ती है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान से यह विशेष रूप से बढ़ती है.
- **English:** As a monk's equanimity and penance grow, Nirjara increases accordingly, especially through the practice of righteous and pure meditation (*Dharma-Sukla Dhyana*).

Verses 106–108: Stages of Exponential Nirjara

- **Hindi:** सम्यक्त्व की उत्पत्ति से लेकर अयोगकेवली तक के विभिन्न आध्यात्मिक चरणों में निर्जरा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणी (exponentially) बढ़ती जाती है.

- **English:** The shedding of karma increases exponentially at each higher spiritual stage—from the first attainment of right faith to the final stages of an omniscient being (*Ayoga-kevali*).

Verse 109: Enduring Hardships

- **Hindi:** जो मुनि कषायों को जीतकर दुर्वचन, अनादर और उपद्रवों को शांत भाव से सहता है, उसके विपुल निर्जरा होती है.
- **English:** A monk who conquers his passions and calmly endures harsh words, disrespect from peers, and external calamities experiences abundant Nirjara.

Verse 110: View on Afflictions as Debt Repayment

- **Hindi:** जो उपसर्गों और कष्टों को पूर्व संचित पापों का फल और ऋण-मुक्ति के समान मानता है, वह महान निर्जरा करता है.
- **English:** One who views calamities and afflictions as the fruit of past sins and as the repayment of a karmic debt sheds karma effectively.

Verse 111: Body vs. Soul

- **Hindi:** शरीर को अपवित्र और मोह का कारण जानकर, और आत्मा के रत्नत्रय स्वरूप का चिंतन करने वाले के बहुत निर्जरा होती है.
- **English:** Significant Nirjara occurs for one who views the body as impure and a source of attachment, while reflecting on the pure, eternal nature of Right Faith, Knowledge, and Conduct.

Verse 112: Self-Censure and Respect

- **Hindi:** जो अपने दोषों की निंदा करता है, गुणवानों का आदर करता है और मन-इन्द्रियों को जीतता है, उसके प्रचुर निर्जरा होती है.
- **English:** One who censures his own faults, honors the virtuous, and conquers his mind and senses attains great Nirjara.

Verse 113: Success of the Monk

- **Hindi:** ऐसे साधु का जन्म सफल है; उसके पापों का नाश होता है, पुण्य बढ़ता है और वह मोक्ष प्राप्त करता है.
- **English:** Such a monk's life is fruitful; his sins are destroyed, his merit increases, and he ultimately attains liberation.

Verse 114: Supreme Nirjara

- **Hindi:** जो साम्य भाव के सुख में लीन होकर बार-बार अपनी आत्मा का ध्यान करता है, उसके उत्कृष्ट निर्जरा होती है.
- **English:** Supreme Nirjara manifests in him who is absorbed in the bliss of equanimity and repeatedly meditates upon the self while conquering passions.

Conclusion (Doha)

- **Hindi:** पूरब बांधे कर्म जे, छूटे तपोबल पाय। सो निर्जरा कहाय है, धारें ते शिव जाय.
- **English:** The karmas bound in the past that are shed through the power of penance are called Nirjara; those who practice this path reach the city of liberation.

Based on the provided source, the **Loka Anupreksha (Contemplation of the Universe)** is a vast chapter spanning from **Verse 115 to 283**. It details the structure of the universe, the living beings within it, and the metaphysical laws governing it.

Below are the verse-by-verse meanings as described in the sources:

I. Structure and Nature of the Universe (Verses 115–121)

- **Verse 115:** The universe (*Loka*) is situated in the exact center of infinite space (*Akasha*). It was not created by anyone, nor is it supported by gods like Hari, Hara, or Brahma.
- **Verse 116:** The universe is formed by the mutual interpenetration of the six substances (*Dravyas*). Since these substances are eternal, the universe itself is eternal.
- **Verse 117:** Although substances are eternal, they are also transformable (*Parinamshila*). Thus, while the general shape of the universe is permanent, its contents undergo constant production and destruction of modes.
- **Verse 118:** The width of the universe is 7 *Rajus* at the base, 1 *Raju* in the middle, 5 *Rajus* at the *Brahma-svarga*, and 1 *Raju* at the very top.
- **Verse 119:** The North-South depth is 7 *Rajus* throughout. Its height is 14 *Rajus*, and its total volume is 343 cubic *Rajus*.
- **Verse 120:** Below Mount Meru is the Lower World (7 *Rajus*), above is the Upper World (7 *Rajus*), and between them is the Middle World.
- **Verse 121:** The word "Loka" refers to that which is "seen" or where substances are perceived. At the peak of the universe reside the infinite, eternal *Siddhas* (liberated souls).

II. Living Beings and Biology (Verses 122–175)

- **Verse 122:** One-sense beings (*Ekendriya*) fill the entire universe. However, mobile beings (*Trasa*) exist only within the specific "Trasa-conduit" (*Trasa-nadi*).
- **Verse 123:** Living beings are either Gross (*Badar*), requiring physical support, or Subtle (*Sukshma*), which pervade space without needing support.
- **Verses 124–128:** Classification of one-sense beings into earth, water, fire, and air bodies. Plants are divided into "Common" (*Sadharan*—sharing one body among infinite souls) and "Individual" (*Pratyeka*) [156–161].

- **Verses 129–131:** Detailed classification of animals (*Tiryancha*) based on their habitats (water, land, sky) and whether they possess a mind [163–166].
- **Verses 132–133:** Classification of humans based on their continents (*Arya* and *Mlechha*) and birth types.
- **Verses 134–141:** Explanation of the six biological capabilities (*Paryapti*) and the ten vitalities (*Pranas*) that define a living being [168–176].
- **Verses 142–175:** These verses provide a detailed census of the universe, describing the locations, population counts, lifespans, and physical sizes of every type of living being, from hellish to celestial forms [176–196].

III. Metaphysics of the Soul (Verses 176–205)

- **Verses 176–187:** These verses explain that the soul is not all-pervading but takes the size of its body. It critiques external philosophies, proving that the soul is distinct from the physical elements [197–208].
- **Verses 188–191:** The soul is the doer of its own karma and the enjoyer of its fruits. Through Right Faith, Knowledge, and Conduct, it becomes its own savior [208–214].
- **Verses 192–203:** Classification of the soul into three types: the Exterior Soul (*Bahiratma*—deluded), Interior Soul (*Antaratma*—awakened), and Supreme Soul (*Paramatma*—liberated) [214–224].
- **Verses 204–205:** The soul is declared the "Supreme Substance" (*Parama Tattva*) because it is the only one capable of knowledge and experiencing bliss.

IV. Physical and Metaphysical Laws (Verses 206–282)

- **Verses 206–211:** Definition of Matter (*Pudgala*), which possesses color, taste, smell, and touch. It exists in infinite quantities and either assists or obstructs the soul [225–229].
- **Verses 212–219:** Descriptions of *Dharma* (medium of motion), *Adharma* (medium of rest), *Akasha* (space), and *Kala* (time) as the invisible scaffolds of the universe [230–236].
- **Verses 220–236:** Detailed analysis of Time (*Kala*) and the relationship between causes and effects in the universe [237–251].
- **Verses 237–252:** The logic of reality: everything is characterized by origination, destruction, and permanence (*Utpada-Vyaya-Dhrauvya*). Purely momentary or purely eternal views are rejected [252–264].
- **Verses 253–261:** Definition of Knowledge. It is the very nature of the soul to know both itself and others [265–273].
- **Verses 262–282:** Introduction to the seven *Nayas* (points of view) used to understand the multi-faceted nature of reality, such as the *Naigama*, *Sangraha*, and *Vyavahara* points of view [274–296].

V. Conclusion (Verse 283)

- **Verse 283:** One who meditates on the nature of the universe with equanimity and a peaceful mind destroys the heap of karma and becomes the "crest-jewel" of the universe (attains Moksha).

The **Bodhi-Durlabha Anupreksha (Contemplation on the Rarity of Enlightenment)**covers verses **284 to 301**. This reflection emphasizes the extreme difficulty of attaining a human life and the spiritual wisdom necessary for liberation.

11. Bodhi-Durlabha Anupreksha (Rarity of Enlightenment)

- **Verse 284:** For an infinite time since the beginningless past, the soul has resided in *Nigoda* (the lowest form of life). Emerging from this state to even become an immobile being (*Sthavara*), such as an earth-bodied or plant-bodied being, is extremely rare.
- **Verse 285:** Even after becoming a *Sthavara* being, the soul wanders for an incalculable time. Attaining the status of a mobile being (*Trasa*) is as rare and difficult as finding a wish-fulfilling jewel (*Chintamani*).
- **Verse 286:** Within the mobile realm, the soul spends millions of years in two, three, or four-sensed forms. Moving from these to attain a five-sensed body is an achievement of great difficulty.
- **Verse 287:** Even if one becomes a five-sensed being, they are often born without a mind (*Asaini*), unable to distinguish the self from others. If they are born with a mind (*Saini*), they may still be born as cruel animals like lions or snakes.
- **Verse 288:** Such cruel animals, possessed by intense sinful dispositions (*Leshya*), eventually fall into the terrifying miseries of hell, where they suffer immense physical and mental pain.
- **Verse 289:** After emerging from hell, the soul is often reborn as a sinful animal, continuing a cycle of infinite and varied suffering.
- **Verse 290:** Attaining a human birth after wandering through animal forms is as rare as a precious gem found by chance at a crossroads. Yet, many who become humans remain deluded (*Mithyadrishi*) and continue to accumulate sin.
- **Verse 291:** Even if one is born human in a noble land (*Arya-khanda*), they may not attain a noble lineage. If they attain a noble lineage, they might be born into extreme poverty.
- **Verse 292:** If one possesses wealth, they may lack functional senses. If their senses are perfect, their body might be plagued by chronic disease.
- **Verse 293:** If the body is healthy, the lifespan might be short. If the lifespan is long, the soul may lack a virtuous character (*Shila*).
- **Verse 294:** Even with a virtuous nature, one may not find the company of true saints (*Sahu*). Even if they find such company, attaining Right Faith (*Samyaktva*) remains an extremely rare event.
- **Verse 295:** Even after attaining Right Faith, the soul may fail to adopt Right Conduct (*Charitra*). Even if conduct is adopted, maintaining it without failure is a great challenge.

- **Verse 296:** If a soul attains the "Three Jewels" (*Ratnatraya*—Right Faith, Knowledge, and Conduct) but then indulges in intense passions (*Kashayas*), it destroys its spiritual progress and falls back into miserable states.
- **Verse 297:** Recognizing that human birth is as rare as a gem lost in the ocean, one must renounce delusion and passions to protect this opportunity.
- **Verse 298:** If a human's merit leads them to be reborn as a deity, they may have Right Faith, but they cannot practice the absolute penance or vows required for final liberation.
- **Verse 299:** The human realm is the unique place where penance, absolute vows (*Mahavrata*), deep meditation, and final liberation (*Nirvana*) are possible.
- **Verse 300:** Those who waste this rarest of human births on sensory pleasures are like fools who burn a divine, priceless gem just to obtain a handful of ash.
- **Verse 301:** Having finally attained the most difficult combination in the universe—human birth and the Three Jewels—one should hold them with the highest honor and respect.

Based on the sources, **Dharma Anupreksha (Contemplation of Religion/Truth)** is the final and most extensive reflection, spanning from **Verse 302 to 435**. It details the nature of true religion, the path for householders, and the supreme virtues of monks.

१२. धर्म-अनुप्रेक्षा (Dharma Anupreksha - Contemplation of Truth)

I. The Source of Dharma (Verses 302–304)

- **Verse 302:** True religion is rooted in the **Sarvajna** (Omniscient Lord), who perceives the entire universe and all three periods of time simultaneously.
- **Verse 303:** Without an omniscient being, supersensory truths (like the results of karma) cannot be known, as sensory knowledge is limited only to gross objects.
- **Verse 304:** The religion taught by the Omniscient is twofold: for householders (12 types) and for monks (10 types).

II. Attaining Right Faith - Samyaktva (Verses 307–310)

- **Verse 307:** Right faith is attained by a sentient being (*Saini*) in any of the four realms who is pure-minded, fully developed, and close to liberation.
- **Verses 308–309:** It is classified into three types—**Upshama** (subsidence), **Kshayika** (destruction), and **Kshayopshamika** (destruction-cum-subsidence)—based on the state of the seven deluding karmas.

III. The Logic of Reality - Anekantavada (Verses 311–312)

- **Verse 311:** A right believer accepts the **Anekanta** (multi-faceted) nature of reality through **Syadvada** (sevenfold predication) to understand the truth from different perspectives.
- **Verse 312:** One who accepts the nine categories of reality (Soul, Non-soul, Inflow, etc.) through the lens of logic and points of view (*Nayas*) is a pure believer.

IV. Characteristics of a Right Believer (Verses 313–327)

- **Verse 313:** A right believer is free from pride regarding family or wealth and views the self as humble as a blade of grass compared to the supreme potential of the soul.
- **Verse 316:** Even while living in a body, the wise one knows the soul is distinct, like a person knows they are distinct from the clothes (*Kanchuka*) they wear.
- **Verse 321–322:** They maintain equanimity, knowing that whatever is destined to happen—be it life, death, or suffering—cannot be altered even by a god like Indra.

V. The 11 Stages of a Householder - Pratimas (Verses 328–391)

The sources describe the progressive stages of a layman's spiritual life [344–410]:

1. **Darshana (328):** Pure faith, giving up meat, alcohol, honey, and the five forbidden fruits.
2. **Vrata (330):** Observing the five partial vows (*Anuvratas*) and seven supplementary vows.
3. **Samayika (371):** Practicing equanimity and meditation at fixed times.
4. **Proshadhopavasa (373):** Fasting on specific days of the lunar month.
5. **Sachitta-tyaga (379):** Renouncing the consumption of living plants (uncooked greens).
6. **Ratri-bhuktivrata (382):** Strictly renouncing food and water after sunset.
7. **Brahmacharya (384):** Complete celibacy.
8. **Arambha-tyaga (385):** Renouncing all occupational activities.
9. **Parigraha-tyaga (386):** Giving up all worldly possessions.
10. **Anumati-tyaga (388):** Not giving consent to worldly household affairs.
11. **Uddishta-tyaga (390):** Not eating food specifically prepared for oneself; living like a monk.

VI. The 10 Virtues of Monks - Das Lakshana Dharma (Verses 392–403)

True religion for a monk is defined by these ten virtues [415–435]:

- **Kshama (Forgiveness):** Remaining calm even under severe torture.
- **Mardava (Humility):** Absence of pride in knowledge or penance.
- **Arjava (Straightforwardness):** Harmony between mind, speech, and body.
- **Shaucha (Purity):** Freedom from greed and a satisfied mind.
- **Satya (Truth):** Speaking only what is beneficial and aligned with scripture.
- **Samyama (Restraint):** Controlling the senses and protecting all living beings.
- **Tapa (Penance):** Enduring physical hardships for spiritual purification.
- **Tyaga (Renunciation):** Giving up attachments to objects and places.
- **Akinchanya (Non-attachment):** Believing "I possess nothing but my soul".
- **Brahmacharya (Chastity):** Being absorbed in the nature of the pure Self.

VII. Non-Violence and the 8 Limbs of Faith (Verses 404–424)

- **Verse 404:** Religion is non-violence. Any practice involving even subtle violence is not religion.
- **Verses 413–424:** Right faith is strengthened by eight qualities applied to non-violence, such as **Nishankita** (no doubt in the path of compassion), **Nishkankshita** (no desire for worldly gain through religion), and **Vatsalya**(selfless love for fellow practitioners) [452–462].

VIII. Conclusion: Glory of Dharma (Verses 425–435)

- **Verse 430:** Through the power of true religion, even an animal can become a deity and a social outcast can become the King of Heaven (*Indra*).
- **Verse 431:** For one protected by Dharma, fire becomes as cool as snow and a snake becomes as harmless as a garland of flowers.
- **Verse 435:** Seeing the visible greatness of Dharma and the misery caused by sin, one should embrace religion and renounce sin from afar.

The remaining verses of the **Dvadasha Anupreksha** (from Verse 436 to 490) serve as a supplement or *Chulika* to the **Dharma Anupreksha**. They detail the twelve types of penance (*Dvadasha Tapa*)—six external and six internal—followed by the concluding remarks of the author, Swami Kartikeya.

The Twelve Types of Penance (Dvadasha Tapa)

I. Six External Penances (Bahya Tapa) [Verses 436–448]

These penances involve the regulation of physical activities and food to control the senses.

- **Verse 436:** Introduction to the 12 types of penance, which are the primary causes for the shedding of karma (*Nirjara*).
- **Verses 437–440 (Anashana):** Fasting. True fasting is not merely avoiding food but steadying the mind in the self and conquering the senses.
- **Verses 441–442 (Avamaudarya):** Eating less than one's appetite. This should be done without greed and for the purpose of spiritual practice.
- **Verse 443 (Vritti-Parisankhyana):** Setting specific mental conditions or limits (e.g., number of houses visited) before going for alms.
- **Verse 444 (Rasaparityaga):** Renouncing the six types of tasty substances (milk, curd, ghee, etc.) to decrease attachment and passion.
- **Verses 445–447 (Viviktashayyasana):** Residing in lonely, secluded places like caves or empty houses to avoid mental distractions and attachment.
- **Verse 448 (Kayaklesha):** Mortification of the body. Enduring physical hardships (like the summer heat or winter cold) while maintaining a calm, meditative mind.

II. Six Internal Penances (Abhyantara Tapa) [Verses 449–486]

These focus on the internal purification of the mind and soul.

- **Verses 449–453 (Prayashchitta):** Expiation/Repentance. Admitting one's faults before a Guru and performing the prescribed penance to purify the soul.
- **Verses 454–456 (Vinaya):** Humility. Exhibiting deep reverence toward the Three Jewels (Faith, Knowledge, Conduct) and the elders/monks who possess them.
- **Verses 457–458 (Vaiyavritya):** Service. Rendering selfless physical or spiritual service to monks, the sick, and the elderly.
- **Verses 459–464 (Svadhyaya):** Self-study. Constantly reading, thinking, and teaching the scriptures to gain spiritual insight.
- **Verses 465–467 (Vyutsarga):** Renunciation of bodily attachment. Realizing that "I am not this body" and giving up all pride and concern for the physical form.
- **Verses 468–485 (Dhyana):** Meditation. Concentrating the mind on a single object. It is divided into:
  - **Verses 471–472:** *Arta Dhyana* (Painful meditation - to be avoided).
  - **Verses 473–474:** *Raudra Dhyana* (Cruel/Wrathful meditation - to be avoided).
  - **Verses 475–480:** *Dharma Dhyana* (Righteous meditation - to be practiced).
  - **Verses 481–485:** *Shukla Dhyana* (Pure meditation - attained by advanced practitioners).
- **Verse 486:** Concludes the glory of these twelve penances, stating they lead directly to liberation.

III. Conclusion and Final Benediction [Verses 487–490]

- **Verse 487:** Swami Kartikeya explains his **purpose for writing**: he composed these contemplations with great devotion to steady his own "fickle mind" and for the spiritual benefit of other seekers.
- **Verse 488:** He describes the **fruit of the work**: whoever reads, listens to, or contemplates these twelve reflections will eventually attain supreme, eternal bliss.
- **Verse 489: Final Salutation**: The author offers his final obeisance to the Tirthankaras—specifically Vasupujya, Malli, Nemi, Parshva, and Vardhamana—who renounced the world and practiced severe penance starting from their youth (*Kumar-kala*).
- **Verse 490:** A concluding verse on the successful completion of the text and its spiritual merit (*Antya Mangal*).